नेहरू युवा केन्द्र संगठन

नेहरू युवा केन्द्र संगठन अपने प्रकार का विश्व में सबसे बड़ा गैर राजनैतिक समुदाय आधारित संगठन है।

- इसमें 13-35 आयु वर्ग के 80 लाख गैर छात्र ग्रामीण युवा शामिल हैं।
- 2.30 लाख से ज्यादा स्वैच्छिक गांव स्तरीय युवा संगठन इससे जुड़े हुए हैं।
- पूरे देश में इसके 500 जिले हैं।
- इसमें 2551 युवा विकास केन्द्र और 146 ई-मंडल (ग्रामीण सूचना प्रौद्योगिकी ग्रामीण विकास केन्द्र)।
- नेहरू युवा केन्द्र प्रत्येक वर्ष 56000 से अधिक कार्यकर्त्ताओं का चयन करता है और उनको युवा नेता के रूप में प्रशिक्षित करता है।

"आज़ादी के बाद पैदा हुई पीढ़ी के लिए शायद यह अविश्वसनीय लगे कि जिस नौजवान को दुनियां की सारी सुख सुविधाएं विरासत में मिली हों वह आम लोगों के हक की लड़ाई में कूद पड़े और आतताइयों के जुल्म की परवाह किए बगैर, गाँव, गाँव, शहर, शहर आज़ादी का परचम लहराते हुए निकल पड़े। नेहरू जवानी के जोश की एक रोमांटिक अभिव्यक्ति मात्र नहीं थे जिनके ओजस्वी भाषणों से मृतप्राय हृदय में भी आज़ादी की आकांक्षा के शोले भड़क उठते थे। यह वो नौजवान था जो समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, आज़ादी, बराबरी, गरीबों, महिलाओं, शोषितों के हक, शांति और भाईचारे जैसे दुनियां के बेहतरीन और नवीनतम विचारों का मसीहा था जिसने जिसने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की मुहिम को एक ठोस दिशा और एक चमकदार धार भी दी।"

संपादन एवं संकलन: वागीश कुमार झा

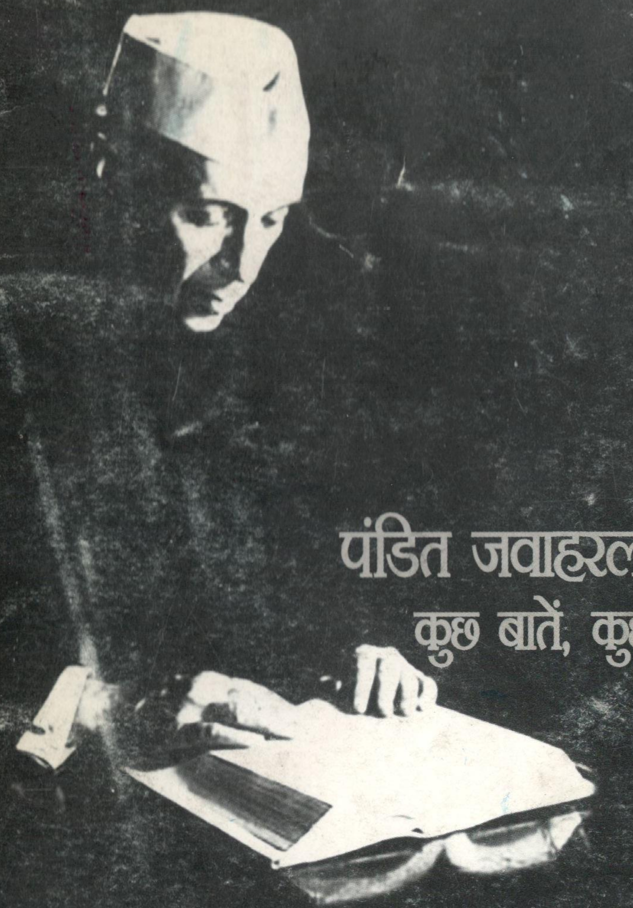
नेहरु युवा केन्द्र संगठन

युवा कार्यक्रम एवं खेल मंत्रालय, भारत सरकार

पूर्वी प्लाजा, इन्दिरा गाँधी इण्डोर स्टेडियम, नई दिल्ली-110002

दूरभाष : +91-11-2339 2541, फैक्स : +91-11-2339 2539

E-maiL feedback@nyks.org. Visit us at www.nyks.org



पंडित जवाहरलाल नेहरु

कुछ बातें, कुछ यादें . . .

नेहरु युवा केन्द्र संगठन

युवा कार्यक्रम एवं खेल मंत्रालय, भारत सरकार

प्रस्तावना

उनका काला मोजा फट गया था। उन्होंने अपने सेवक से उस फटे मोजे को सिल देने को कहा। घर में काला धागा नहीं था, सो सेवक ने उजले धागे से काला मोजा सिल दिया। अगले दिन उन्होंने वह मोजा पहनने को मांगा और उसे सिला पाकर प्रसन्नता से तुरंत पहन लिया और संसद भवन की ओर चल पड़े। अगले कई महीनों तक उजले धागे से सिला मोजा भारत के प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू के पाँवों की रक्षा में लगा रहा था।

आज़ादी के बाद पैदा हुई पीढ़ी के लिए शायद यह अविश्वसनीय लगे कि जिस नौजवान को दुनियां की सारी सुख सुविधाएं विरासत में मिली हों वह आम लोगों के हक की लड़ाई में कूद पड़े और आततायिओं के जुल्म की परवाह किए बगैर, गाँव-गाँव, शहर-शहर आज़ादी का परचम लहराते हुए निकल पड़े। नेहरू जवानी के जोश की एक रोमांटिक अभिव्यक्ति मात्र नहीं थे जिनके ओजस्वी भाषणों से मृतप्राय हृदय में भी आज़ादी की आकांक्षा के शोले भड़क उठते थे। यह वो नौजवान था जो समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, आज़ादी, बराबरी, गरीबों, महिलाओं, शोषितों के हक, शांति और भाईचारे जैसे दुनियां के बेहतरीन और नवीनतम विचारों का मसीहा था जिसने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की मुहिम को एक ठोस दिशा और एक चमकदार धार दी।

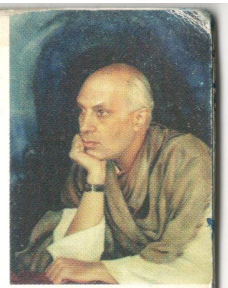
संसार के इतिहास में साहस और विचार का यह मणि-कांचन संयोग बिरले ही मिलता है। जंगे-आजादी की तपिश से निखरते हुए उनके विचार और विश्वदृष्टि ने आज़ादी के बाद सैकड़ों साल के औपनिवेशिक शोषण से जर्जर देश को एक दशक में ही ऐसी मजबूती दी थी कि विश्व में एक बार फिर भारतवर्ष अपने अतीत की गौरवमयी ऊँचाई को प्राप्त कर पाया। नेहरू के हाथों जलायी गयी यह मशाल न केवल भारत बल्कि दुनियां के तमाम गुलाम या हाल में आज़ाद हुए देशों के लिए एक मिसाल बन चुका था।

क्या नेहरू एक करिश्मा थे? नहीं और हाँ। नहीं इसलिए कि जीवन की आखिरी साँस तक नेहरू गहन मानवीय सरोकारों के पैरोकार बने रहे। वह सादगी और सरलता की प्रतिमूर्ति बने रहे। जीवन और विचार के जिस अद्‌भुत समन्वय ने गाँधी को राष्ट्रपिता बनाया उसी नैतिकता ने नेहरू को जन-नायक का दर्जा दिया था। और हाँ, इसलिए कि ऐसी निष्ठा, ऐसी सरलता, ऐसी तरलता करिश्मा ही तो होती होती है।

उनके जीवन से जुड़ी अनेक बातें आज स्वप्नलोक की कहानी लगेंगी। आज के युवाओं के लिए नेहरूजी को जानने, समझने के लिए ऐसी ही कुछ यादें, कुछ बातें इस संकलन में रखने की कोशिश की गई है। पंडित जवाहरलाल नेहरु के जन्मदिन पर तैयार किया गया यह संकलन नेहरु जी के विचारों के प्रति नेहरु युवा केन्द्र संगठन के सरोकारों को और गहराई और मजबूती प्रदान करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

डॉ. शकील अहमद खान
महानिदेशक

नेहरु और आज का हिन्दुस्तान



● विपन चंद्रा
सुप्रसिद्ध इतिहासकार एवं अध्यक्ष नेशनल बुक ट्रस्ट

1942 के कांग्रेस अधिवेशन में गाँधी ने नेहरु को अपना वारिस घोषित किया। उन्होंने कहा कि उनके बाद नेहरु ही उनकी जुबान बोलेंगें। उस वक्त कांग्रेस के अंदर बड़े- बड़े दिग्गज 'गाँधीवादी' मौजूद थे। सोचने की बात है कि नेहरु के साथ औद्योगीकरण, संसदीय लोकतंत्र जैसे अनेक मुद्दों पर अपने सार्वजनिक मतभेदों के बावजूद गाँधी जी ने उन्हें अपना उत्तराधिकारी क्यों घोषित किया?गाँधी यह बात समझते थे कि नेहरु दो बुनियादी सवालों पर ठीक उनकी तरह सोचते थे। पहला, नेहरु हर तरह से गरीबों के हक में सोचते थे और दूसरा कि वह भी राजनीति की शुद्धता और नैतिकता के बारे में वही खयाल रखते थे जो गाँधीजी रखते थे। गाँधी को पूरा भरोसा था कि इन दोनों मुद्दों पर नेहरु ही उनकी सोच को आगे ले जा सकते हैं। कहने की जरुरत नहीं कि ये दोनों मुद्दे आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने की उस समय।

यह सच्चाई है कि नेहरु के दिल में गरीबों का हित सबसे उपर था। उनका यह भी मानना था कि गरीबों की हालत देश की आर्थिक प्रगति के बिना नहीं सुधारी जा सकती। लेकिन वह गरीबों को उपर उठाने वाले विकास के पक्ष में थे। उनका सोचना था कि आर्थिक विकास तभी सफल माना जा सकता है जब इससे गरीबों की स्थिति बेहतर बने, न कि केवल मध्यवर्ग या अमीरों की। आज आर्थिक विकास की दर 8 प्रतिशत हो चुकी है लेकिन गरीबी उस अनुपात में नहीं घट रही है। गरीबों और अमीरों के बीच की खाई बढ़ती जा रही है। यह चिंता की बात है।

नेहरु से भी गलतियां हुई थी। नेहरु ने हालांकि देश में शिक्षा के विकास के लिए बड़ी संख्या में स्कूल और कॉलेज खुलवाए, आई.आई.टी जैसी संस्थाएं बनवायी लेकिन वह पूर्ण साक्षरता सुनिश्चित नहीं करवा पाए। इस पर और भी ज्यादा ध्यान देने की जरुरत थी। दूसरा मुद्दा नौकरशाही का है। नौकरशाही व्यवस्था आज देश की प्रगति के रास्ते में सबसे बड़ा रोड़ा है। इसमें व्यक्तिगत अफसरों का दोष नहीं है बल्कि यह समस्या व्यवस्थागत है। उनका सोचना था कि लोकतंत्र जैसे-जैसे मजबूत होता जाएगा, अफसरशाही व्यवस्था भी सुधरती जाएगी। नेहरु को लोकतांत्रिक व्यवस्था में गहरा विश्वास था। दरअसल लोकतंत्र और नागरिक अधिकार 'यंग-बंगाल' और राजा राममोहन राय के समय से ही स्वतंत्रता आंदोलन का अभिन्न अंग रहा है। गाँधी तो नागरिक अधिकारों में किसी भी प्रकार की कटौती के खिलाफ थे। नेहरु के दृष्टिकोण से लोकतंत्र का अर्थ केवल बहुमत का हित सुरक्षित करना भर नहीं था बल्कि इसका उद्देश्य अधिक से अधिक लोगों के हक को सुनिश्चित करना था। लोकतंत्र के बारे में नेहरु ने जो उस वक्त सोचा, आज यूरोप में भी उसी

असाधारण साहस

नेहरु भारत की आशाओं के प्रतीक थे। उन्होंने भारतीय जनता का गाँधी की तरह नेतृत्व किया था। वह गरीबों की एक जानदार आवाज थे। उनकी मौजूदगी जनता पर जादू की तरह असर डालती थी। वह जनता से एक अनोखी ताकत पाते थे और लोगों को एक निराली शक्ति प्रदान करते थे। जब वह नाराज होते तो लोग चुपचाप खड़े रहते थे। जंगली इन्सान भी उनके सामने इन्सानियत की बात करने लगते थे। 1947 के साम्प्रदायिक दंगों के दौरान उन्होंने गजब की हिम्मत दिखायी थी। जब वह बिना पुलिस के धर्मान्ध और बहके हुए लोगों के हज्जूम में बेधड़क घुस जाते थे तो कुछ लोग बेहद परेशान होते थे। उनसे एक साहब ने एक दिन कहा, 'पंडित जी, ये लोग अपने पागलपन में आपके प्राण ले लेंगे।' उन्होंने जवाब दिया, 'तो मैं क्या करुँ?क्या इन कसाइयों को बेगुनाह लोगों को हलाल करने दूँ?' ऐसी थी इस इन्सान की बहादुरी!

प्रकार सोचा जा रहा है।

धर्मनिरपेक्षता के प्रति नेहरु की प्रतिबद्धता को दुहराने की जरुरत नहीं है। 1932 से ही वह देश के लिए धर्मनिरपेक्षता के महत्व पर जोर देते रहे थे। सांप्रदायिकता के जहर को फैलाने में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसे फासीवादी सस्थाओं के योगदान को वह अच्छी तरह समझते थे। उन्होंने 1947 मे साफ-साफ लिखा कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ देश के लिए सबसे बड़ा खतरा है। धर्मनिरपेक्षता के प्रति उनकी गहरी प्रतिबद्धता को एक घटना से समझा जा सकता है। 1947 के दिल्ली दंगों के दौरान वह एक बार कनॉट प्लेस से गुजर रहे थे। जब उन्होंने वहाँ हो रहे दंगों के बारे में सुना तो जान की परवाह किए बिना वह अपनी गाड़ी से कूद पड़े। लेकिन 1952 के चुनावों के बाद सांप्रदायिकता के खिलाफ उनकी मुहिम कमजोर पड़ गयी। इस चुनाव मे सांप्रदायिक पार्टियों को इतनी कम सीटें मिली कि नेहरु जी को लगने लगा कि सांप्रदायिकता मर चुकी है। यह उनकी भूल थी। सांप्रदायिकता का जहर जब एक बार दिमाग में घुस जाता है तो उससे लड़ने के लिए बहुत ही लंबे संघर्ष की जरुरत होती है।

> धर्म का एक व्यापक अर्थ है। इसके मूल शब्द का अर्थ है एक साथ बांध कर रखने वाली शक्ति, वस्तु की गहनतम बनावट, इसके आंतरिक अस्तित्व का नियम। यह एक नैतिक अवधारणा है जिसमें चारित्रिक गुण, कर्तव्य/धर्म परायणता तथा मनुष्य के कर्तव्यों और दायित्वों की एक पूरी श्रृखला अंतर्निहित है।
>
> **● पं. जवाहरलाल नेहरु**
>
> *भारत एक खोज, 1951*

पाठ्यपुस्तकों में सांप्रदायिक पाठ के बारे में भी नेहरु जी खास ध्यान नहीं दे पाए। हालाँकि 1964-65 में उन्होंने यह मुद्दा उठाया लेकिन तबतक काफी देर हो चुकी थी। ऐसा नहीं था कि शिक्षा मंत्री धर्मनिरपेक्ष नहीं थे, लेकिन यह मुद्दा ठीक से नहीं उठाया गया। हाल फिलहाल तक, 1996-97 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा नियुक्त एक कमिटी ने पाया था कि अनेक राज्यों की पाठ्यपुस्तकों में सांप्रदायिक पाठ मिलते थे। नेहरु जी 'वैज्ञानिक सोच' की बात तो करते थे लेकिन लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया। आज भी पाठ्य-पुस्तकों में वैज्ञानिक जीवन-दृष्टि विकसित करने के लिए कुछ भी नही दिखाई देता।

सांप्रदायिकता का मुकाबला करने के लिए एक लंबे और सशक्त मुहिम की जरूरत होती है। जातीय-उत्पीड़न के खिलाफ गाँधीजी ने 1927-34 के बीच देशव्यापी मुहिम चलायी। उन्होंने पूरे उड़ीसा की पैदल यात्रा की। इसी के कारण बनी चेतना का नतीजा था कि आज़ादी के तुरंत बाद अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को दिए जाने वाले आरक्षण का कोई भी विरोध नहीं हुआ। लेकिन धर्मनिरपेक्षता के लिए ऐसी कोई मुहिम नहीं चलायी गयी, खासकर 1952 के बाद। आज भी कोई राजनीतिक पार्टी धर्मनिरपेक्षता के पक्ष में जनचेतना बनाने के लिए मुहिम नहीं चला रही है।

कुछ लोगों का मानना है कि लोकतंत्र के अंदर 'वोटबैंक' की राजनीति ही सांप्रदायिकता को बढ़ावा देती है। लेकिन इसमें लोकतंत्र का कोई दोष नहीं है। यदि धर्मनिरपेक्ष ताकतें लोगों के बीच जाकर अपनी बातें नहीं कहती है और सांप्रदायिक ताकतें कहती हैं तो इसके लिए लोकतंत्र को जिम्मेवार ठहराना सही नहीं है। बंगलादेश और पाकिस्तान जैसे देशों को देखने से यह बात साफ हो जाती है कि लोकतंत्र के अभाव में सांप्रदायिक शक्तियां ताकतवर बनती हैं न कि लोकतंत्र के कारण। हिंदू और मुसलमान दोनों तरह की सांप्रदायिक शक्तियां लोगों के बीच जाकर अपनी बात कहती हैं और धर्मनिरपेक्ष शक्तियां नहीं कहती हैं। सांप्रदायिकता के खिलाफ लोगों की चेतना को विकसित नहीं कर पाना हमारी विफलता है, न कि लोकतंत्र की।

यह कहना भी बिलकुल गलत होगा कि विकास का नेहरूवादी मॉडल गलत साबित हुआ है। नेहरूजी ने सार्वजनिक क्षेत्र की हिमायत इसलिए की क्योंकि उस वक्त निजी क्षेत्र निवेश करने की स्थिति में नहीं था। सार्वजनिक क्षेत्र की अपनी समस्याएं हैं लेकिन इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि आज हमने जो 7-8 प्रतिशत विकासदर हासिल की है वह नेहरूवादी आर्थिक विकास के मॉडल की नींव पर ही संभव हुआ है। औपनिवेशिक काल में भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास की दर शून्य के बराबर थी जिसे नेहरूजी ने 30-3.5 प्रतिशत तक पहुंचाया। भारी उद्योग, लोहा-इस्पात के कारखाने, आई.आई.टी. और इसी प्रकार के शैक्षणिक संस्थानों को विकसित करना उसी नेहरूवादी दूरदर्शिता को दर्शाता है जिसके कारण आज देश 8 प्रतिशत की दर से विकास कर रहा है।

आज भी लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, आर्थिक विकास, गरीबों की उन्नति, महिलाओं का हक, सामाजिक उत्पीड़न का विरोध आदि मुद्दे भारत के लिए महत्वपूर्ण हैं। युवावर्ग नेहरू के विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन करे और देश-दुनियां के बारे में उनकी सोच पर चले तो यही उनके लिए नेहरू की प्रासंगिकता होगी।

*(यह आलेख **श्री वागीश कुमार झा** के साथ **श्री विपन चंद्रा** की बातचीत पर आधारित है)*

> राष्ट्रवाद अपनी जगह पर ठीक है, लेकिन यह एक अविश्वसनीय दोस्त और असुरक्षित इतिहासकार भी होता है। यह कई घटनाओं पर परदा डाल देता है और कई बार तो सत्य को भी विकृत कर देता है, खासकर तब जब मसला हमसे या हमारे देश से संबंधित होता है।
>
> **● पं. जवाहरलाल नेहरु**
>
> *विश्व इतिहास की झलक, खंड-II, पेज-694*



साम्प्रदायिकता, लोकतंत्र एवं राष्ट्रीय एकता

● जी. पार्थसारथी

हमारे समाज में दो ज्वलंत समस्याएं ऐसी हैं जो नेहरु युग में भी थीं और वे हैं क्षेत्रियता के प्रति अंधनिष्ठा से उत्पन्न हुई चुनौतियां और धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक द्वेष से उत्पन्न खतरे। अपने संपूर्ण राजनैतिक जीवनकाल के दौरान नेहरु धर्मनिर्पेक्षता के प्रबल समर्थक रहे। उनकी मान्यता थी कि यह भारत की एकता का सुदृढ़ आधार हैं। एक बार उन्होंने कहा था, " हमने अपने संविधान में भारत को धर्मनिर्पेक्ष राज्य घोषित किया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि यहां धर्म के लिए कोई स्थान नहीं है। इसका अभिप्राय है सभी धर्मों का समान रुप से आदर करना और सभी धर्मों के अनुयायियों को समान अवसर प्रदान करना।'' भारतीय राजनीति के इस बदलते परिवेश में, क्षेत्रियता के प्रति निष्ठा संभवत: एक बड़ी समस्या का रुप धारण कर चुकी है। इस संबंध में एक बार टिप्पणी करते हुए नेहरु ने ठीक ही कहा था, "मेरे विचार से और संभवत: आपके विचार से भी उत्तर और दक्षिण तथा पूर्व और पश्चिम भारत में कोई भेद नहीं है। भारत एक है। मैं और आप सब इसके उत्तराधिकारी हैं। भारत हम सबका है।''

> वैज्ञानिक प्रगति का मकसद होना चाहिए आध्यात्मिक दृष्टिकोण पर आधारित प्राचीन भारतीय चिंतन तथा सत्य की खोज में प्रयोग पर आधारित आधुनिक वैज्ञानिक प्रयत्न का संगम।
>
> ● पं. जवाहरलाल नेहरु
>
> *भाषण, कलकत्ता, 30 नवम्बर, 1958*

स्वतंत्रता संग्राम के साथ लम्बे समय तक सम्बद्ध रहने के दौरान उनके समक्ष एक अखंड और भावनात्मक दृष्टि से अविभाज्य भारत की छवि उभरी। विभाजन की दुखद घटना देश के लिए गहरा आघात था परन्तु इस कम से कम कड़वे घूट को पीने के अलावा कोई दूसरा चारा न था और प्रधानमंत्रित्व काल में वह हमेशा एकता की आवश्यकता पर बल देते रहे, क्योंकि उनकी राय में अन्य मार्गों से शनै: शनै: विघटन और अंतत: पतन निश्चित था। अपने लम्बे इतिहास के दौरान भारत ने विभाजन के अभिशाप को कई बार झेला है और नेहरु महसूस करते थे कि यह हमारी पीढ़ी का कर्तव्य है कि हम इसकी पुनरावृति न होंने दें। यह जरुरी था कि सौहार्दपूर्ण वातावरण तैयार किया जाए, विभाजनकारी विचारों को समूल नष्ट किया जाए और एक पूर्णत: संघटित राष्ट्र का निर्माण किया जाए, जो विश्व- मंचों में प्रभावी ढंग से भाग लेने के लिए इच्छुक हो और साथ ही योग्यता रखता हो। उन्होंने यही बात इन शब्दों में कही थी: "हम, भारतवासी एक ओर तो संस्कृति, समान उद्देश्यों, मैत्री एवं प्रेम की मजबूत डोर से बंधे हुए हैं, तो दूसरी ओर दुर्भाग्य से भारत में विघटनकारी और अलगाववादी प्रवृत्तियों की जड़ें भी दबी पड़ी है जो नये मुद्दों के रुप में अनुकूल वातावरण पाकर फूट पड़ती है। हम देख चुके हैं कि अपने अनेक विशिष्ट गुणों एवं योग्यताओं के बावजूद हम बार -बार अलग-अलग कौमों में बटे हुए हैं और इस एकता के अभाव के कारण ही भारत के लोग ऐसी विभिन्न जातियों और सम्प्रदायों में विभाजित हो गए हैं कि अब उनके लिये मिलजुल कर एक-साथ रहना मुश्किल हो रहा है। अत: मैं भारत की एकता कायम रखने और साम्प्रदायिकता, प्रांतीयता, अलगाववादी और जातिवादी प्रवृत्तियों के विरुद्ध संघर्ष छोड़ने की आवश्यकता पर हमेशा बल देता हूँ।''

मार्च 1964 में अपने जीवन के अवसानकाल में नेहरु का झुकाव पुन: धर्मनिरपेक्षता की ओर हुआ। किन्तु इस प्रकार उनके दृष्टिकोण में आशा की झलक अधिक थी: "आदि काल से ही भारत की जनता परस्पर सौहार्द से रहकर गौरव का अनुभव करती आयी है। यही भारत की संस्कृति का मूल आधार है।.... अत: हमें इस बहुमूल्य विरासत की हिफाजत करनी है और हमें कोई ऐसा काम नहीं करना है जिससे यह नष्ट हो जाए.... हमें सदैव यह बात याद रखनी चाहिए कि प्रत्येक भारतीय चाहे वह किसी धर्म का अनुयायी हो, हमारा भाई है और उसे भाई वास्तव में माना भी जाना चाहिए।''

एक अखण्ड राष्ट्र और पूर्णरुपेण धर्मनिरपेक्ष भारत की कल्पना एक यथार्थ समाजवादी कार्यक्रम की सरकार के बिना नहीं हो सकती है। नेहरु की राय थी कि लोकतंत्र, समाजवाद और शांति को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है बल्कि ये तीनों एक दूसरे की अपेक्षा करते हैं और एक दूसरे को मजबूत करते हैं। सच्चे समाजवाद का अर्थ है सुदृढ़ लोकतंत्र, न कि लोकतांत्रिक मूल्यों का अभाव। सुदृढ़ लोकतांत्रिक और समाजवादी व्यवस्था वाला भारत ही संकटग्रस्त विश्व में शांति की खोज में सार्थक भूमिका निभाने में सक्षम हो सकेगा। इसमें हैरानी की कोई बात नहीं है। स्वतंत्रता प्राप्त होने से बहुत पहले नेहरु ने यह महसूस कर लिया था कि भारत का स्वतंत्रता संग्राम अपने आप में लोकतंत्र के लिए संघर्ष भी है। सिविल लिबर्टीज युनियन के प्रति उनकी दिलचस्पी उनकी इस भावना की प्रतीक है। चौथे दशक के दौरान नेहरु के लोकतंत्र के प्रति अडिग विश्वास ने ही उन्हें फासीवाद और तानाशाही का विरोधी बना दिया था। उन्होंने इस बात पर जोर दिया था कि हमारे नए संविधान में लोकतांत्रिक व्यवस्था को उचित स्थान दिया जाना चाहिए। यह न तो संयोग मात्रा था और न रमणीय कल्पना मात्र थी कि वयस्क मताधिकार पद्धति को, जिसे पश्चिमी देशों में भी हाल ही में अपनाया गया है, भारत में पहले प्रयास में ही अपना लिया गया था। नेहरु व्यक्ति के मूल अधिकारों, स्वतंत्र न्यायपालिका और समाचार-पत्रों की पूर्ण स्वतंत्रता पर हमेशा बल दिया करते थे।

> **जनता के प्यारे**
>
> नेहरु जनता के सच्चे प्रेमी थे। उनकी सबसे बड़ी ख्वाहिश यह थी कि वह लोगों की गरीबी दूर कर सकें और उनके घरों में खुशी के चिराग जला सकें। लोग उन्हें बेहद प्यार करते थे और इस पर उन्हें बड़ा नाज था। जनता की मुहब्बत के बोझ ने उन्हें दबा दिया था और इस बात की उन्होंने कई बार चर्चा भी की थी। जहाँ कहीं वह जाते थे, लोग उन्हें देखने को लालायित रहते थे। वह मुस्कराते थे, तो लोग हँसते थे। वह झुँझलाते तो जनता परेशान हो जाती। उन्हें गुस्सा आता, तो लोग डर जाते। उनकी सबसे बड़ी ताकत लोकप्रियता ही थी। जब नेहरु का दूसरे नेताओं से मतभेद होता और लोग उन्हें दबाना चाहते तो वह अपने तरीके से इन लोगों को चुनौती देते थे और कभी परेशानी नहीं होते थे कि जनता उनके साथ है।

नेहरु निरन्तर यह प्रयास किया करते थे कि अधिकांश मामलों में राष्ट्र स्तर पर मतैक्य बन जाए। उन्होंने लोगों के एक नए समाज के निर्माण के लिए लोकतांत्रिक तथा समाजवादी मूल्यों को अपनाने हेतु प्रगतिशील बनने की शिक्षा दी। वह समाज के विकास में व्यक्ति को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान देने और उसे विकास का पूरा अवसर देने को बहुत अधिक महत्व देते थे। "पर शर्त यह है कि व्यक्ति किसी वर्ग-विशेष का न होकर जनसाधारण में से हो।'' गांधीजी को स्मरण करते हुए उन्होंने कहा था, "जीवन का दर्शन होड़ अथवा अर्जन मात्र न होकर सहयोग होना चाहिए, प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण में सबका कल्याण निहित है।''

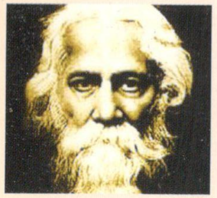
गांधीजी की भांति, नेहरु एक मानवोचित और न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था में विश्वास रखते थे। इसके पीछे मुख्य

उद्देश्य यह था कि जन सामान्य के जीवन-स्तर में सुधार लाया जाए। वर्ष 1947 से काफी पहले ही, जवाहरलाल नेहरु ने किसी भी वाद के प्रति बेकार की कट्टरता दिखाए बिना व्यावहारिक रुप से प्रारुप- खाका तैयार करने हेतु कांग्रेस की राष्ट्रीय योजना समिति का गठन किया था। समाजवाद उनके लिए हठधर्मिता नहीं थी। बल्कि इसे वह सिद्धांतों का एक ऐसा ढांचा मानते थे, जिसे भारतीय परिप्रेक्ष्य के अनुकूल ढालकर अपनाने की जरुतत थी। उन्होंने प्रारम्भ में ही यह अनुभव कर लिया था कि उत्पादन को सर्वोपरि प्राथमिकता दी जानी चाहिए; उचित वितरण के लिए अपने पास पर्याप्त वितरण- सामग्री तो होनी ही चाहिए। समसामयिक उपायों के जरिए उत्पादन बढ़ाने और आधुनिक प्रौद्योगिकी पर इतना अधिक बल देने के लिए विवश होना पड़ा। ऐसा करते हुए, उन्होंने समृद्ध देशों का अन्धानुकरण नहीं किया। विकासशील देशों के लिए कृषि को विशेष महत्व दिया जाना अधिक आवश्यक था। आज हमें उनकी प्राथमिकताओं संबंधी स्पष्ट सूझबूझ का लाभ मिल रहा है। भारी उद्योग ने भारत को प्रौद्योगिकीय आधार प्रदान किया है। मशीनों की मदद से खेती करके कृषि को भी आधुनिक बनाए जाने की आवश्यक्ता थी, जिसके लिए भारी औद्योगिक आधार तैयार करना बहुत जरुरी था। कृषि के द्रुत विकास को सुनिश्चित करने का यही एक तरीका है।

> शांति तभी संभव है जब मुल्क आजाद हों और हर जगह लोगों को आजादी, सुरक्षा और अवसर प्राप्त हो। इसलिए शांति और स्वतंत्रता दोनों को राजनीतिक और आर्थिक पहलुओं में देखा जाना चाहिए।
>
> **• पं. जवाहरलाल नेहरु**
>
> *'इंडिपेंडेंस एंड आफ्टर' पृष्ठ'-249: एशियाई सम्मेलन का उद्घाटन भाषण, नयी दिल्ली, 23 मार्च 1947*

जवाहरलाल नेहरु ने, ऐसे समय मे जब कोई परिवर्तन और आमूल चूल हेर-फेर करना बहुत ही कठिन था, विदेश नीति के क्षेत्र और विदेशों के साथ भारत के स्वतंत्र संबंध स्थापित करने में रचनात्मक भूमिका निभाई। उन्होंने विदेश नीति के सिद्धांत तय किए और उसका अक्षरश: पालन किया। उन्होंने भारत की आजादी की लड़ाई को, चारों ओर गुलामी की जंजीरों में जकड़े सभी लोगों को आजाद कराने के संघर्ष के रुप में लिया। वह जानते थे कि भारत जैसे नए आजाद हुए देश को परमाणु युग की चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा और ताकतवर विरोधी राष्ट्रों के बीच तनाव कम करने के लिए साहसिक भूमिका निभानी होगी। उन्होंने सहयोग के क्षेत्र में वृद्धि करने तथा वैमनस्य और संघर्ष के कारणों को समाप्त करने के लिए यथासंभव प्रयास किए। उनकी उपलब्धियां यहीं समाप्त नहीं होतीं। वह बदलाव, शांतिपूर्ण तरीके से बदलाव, लेकिन तेज बदलाव की जरुरत के प्रति हर समय सचेत रहे। उनके अनुसार ऐसा न होने पर शांति भंग होती तथा संघर्ष और युद्ध से शांति के बेहतर परिणाम तहस- नहस हो जाते। वह चाहते थे कि देश में 'खुशहाल समाज' तथा पूरे विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सहयोग स्थापित किया जाए।

तीक्ष्ण टीका- टिप्पणी करने की यह क्षमता, अपने निकटवर्ती पर्यावरण के संबंध में पूर्णत: तटस्थ होकर विश्लेषण करने की योग्यता आदि नेहरु के कुछ ऐसे गुण हैं, जो उनके समकालीन युवाओं ने इस चुंबकीय व्यक्तित्व के सानिध्य में कई वर्षों तक रहकर आत्मसात किए। उन्होंने फ्रांस की क्रांति और 1917 की रुस की क्रांति तथा पांचवे और छठे दशक के दौरान उपनिवेश समाप्त करने के एक भारी सैलाब को मानव जाति के सुरक्षा संबंधी प्रयास और उसके अनुपालन के रुप में देखा था। इन सभी घटनाओं को विश्वव्यापी परिवर्तन, क्षेत्रीय अवरोध तथा वैयक्तिक अपवर्तन की परस्पर विरोधी प्रक्रिया में जन-नायकों के लिए स्वयं को आसन्न पूर्वाग्रह से तटस्थ रखना और न केवल अपने ही देश के लिए, बल्कि समूची मानव जाति के लिए एक स्वस्थ दर्शन की परख करना आवश्यक हो गया था। शायद यही एक कारण था कि पंडितजी परमाणु शस्त्रों से होने वाले विध्वंस, जिसे मानव जाति के संपूर्ण विनाश की संज्ञा दी जा सकती है, की आशंका से इतने अधिक व्याकुल और चिन्तित थे। उन्होंने जो खतरे महसूस किए थे, उनमें से अनेक खतरे आज भी विद्यमान हैं और जिनका सामना करने के अलावा, वस्तुत: अब कोई चारा शेष नहीं रह गया है। इन खतरों का सामना उनकी विशिष्ट दलीलों अनासक्ति तथा प्रबल मानव सहानुभूति का रास्ता अपनाकर किया जा सकता है। अन्तिम विश्लेषण के रुप में उनकी नीति का ब्यौरा इतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना कि यथार्थ अनूठा मानवतावादी दृष्टिकोण, जो आने वाले अनेक वर्षों हमें प्रेरणा देता रहेगा।



भारत के ऋतुराज

• रवीन्द्र नाथ टैगोर

जवाहर लाल नेहरू निश्चय ही युवा हृदय सम्राट हैं। उनका योगदान भव्य है। उनका निश्चय दृढ़ है और साहस अभेद्य। नैतिक सत्य के प्रति उनकी निष्ठा और ज्ञानवान चरित्र उनको एक महान ऊंचाई प्रदान करता है। राजनीतिक झंझावातों के बीच जहां फरेब, जिसमें आत्म प्रवंचना भी शामिल है, मनुष्य की सत्यनिष्ठा को नष्ट कर देता है, उन्होंने अपनी नैतिक पवित्रता अक्षुण्य रखी है। जवाहरलाल ने सत्य से कभी मुंह नहीं मोड़ा, चाहे जो भी खतरे आएं; झूठ का दामन कभी नहीं थामा, चाहे इससे जो भी सहूलियतें मिलें। उनकी तेजस्वी बुद्धि ने राजनयिक क्षेत्र में क्षुद्रता से सहज ही प्राप्त होने वाली सफलता की हमेशा खुलकर भर्त्सना की है। आजादी के लिए संघर्ष में उद्देश्य की शुद्धता और सत्य के प्रति अडिग आस्था उनका सबसे बड़ा योगदान रहा है।

आज वसंत के उत्सव होली का अवसर है। धरती पर गिरे पत्तों के बीच, प्रकृति नवजीवन का स्वागत कर रही है, मृत्यु पर विजय का उल्लास मना रही है। नव पल्लव खुशियों की सौगात लाए हैं। ऋतुओं के इस नवजीवन को राष्ट्र के नवजीवन की थिरकन से जोड़कर देखना स्वाभाविक है। जवाहरलाल इसके ऋतुराज हैं, जिनमें नवयौवन का संचार और विजयोल्लास, अन्याय के खिलाफ अभेद्य संघर्ष और स्वतंत्रता के लक्ष्य के प्रति अटूट निष्ठा प्रतिबिंबित हो रही है।

-रवीन्द्र नाथ टैगोर द्वारा 8 मार्च 1936 को कमला नेहरू की मृत्यु के अवसर पर दिए गए भाषण का अनुवाद।

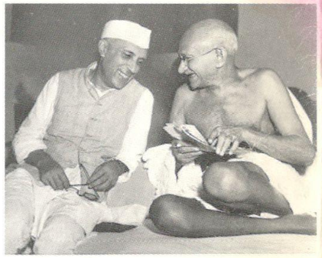
अगर देश ही नहीं तो जिंदगी कैसी?
अगर देश है तो फिर मौत कैसी?

• पं. जवाहरलाल नेहरु

यंग इंडिया, 3 अप्रैल 1930

एक विश्व पुरुष का मौलिक आर्थिक सोच

• पी सी जोशी



(पंडित जी चाहते थे कि उनके सपनों का समाज न्याय पर आधारित हो, जिसमें मानव विकास का साधन नहीं, साध्य हो, और जिसकी अर्थनीति का आधार आपसी सहयोग हो, न कि प्रतिद्वंद्विता या आपसी होड़। अर्थशास्त्री पी सी जोशी का मानना है कि भारत आज जहां खड़ा है वहां जरूरत नेहरू की नीतियों व दर्शन से हटने की नहीं, बल्कि उनकी बुनियादी बातों को दोहराने की ही है।)

विचार फौजों से बड़े होते हैं। विचार योद्धाओं से ज्यादा ताकतवर होते हैं। उनकी शुरुआत तो बड़ी हल्की होती है लेकिन उनका असर बहुत ही ताकतवर।

• पं. जवाहरलाल नेहरु

भाषण, दिल्ली, 5 फरवरी 1929

नेहरू जी की अर्थनीति को उनकी समाज की परिकल्पना से अलग नहीं किया जा सकता है। नेहरू एक मायने में द्रष्टा थे। अपने समय से आगे देखकर चलते थे। आंद्रेय मालरो ने एक बार उनसे पूछा कि वे कैसा समाज चाहते हैं, उन्होंने कहा था कि ऐसे समाज की स्थापना चाहते हैं, जो न्याय पर आधारित हो, जिसके विकास की धुरी न्याय से जुड़ी हो। रूस में जो कुछ हुआ, वह सब तरफ से खिड़कियां बंद करके, अपना पेट कस के, किसी देश से मदद लिए बिना एक देश में होने वाला समाजवादी किस्म का विकास था। नेहरू जी का विकास दिशा निर्धारण इससे कई मायनों में भिन्न था। उनका कहना था कि, "हम खुली व्यवस्था में पूंजीवाद और समाजवाद, दोनों के साथ विकास करेंगे। ऐसा विकास, जो मानवीय होगा, जिसमें मानव विकास का साधन ही नहीं, साध्य भी होगा।" आज यह विचार आम हो गया है। हर पार्टी इसी तरह के आर्थिक सामाजिक विकास की बात करती है। इस मायन में भारत की हर पार्टी नेहरू वादी है।

चौधरी चरण सिंह ने कहा था कि नेहरू बड़ी चीजों के मोह से ग्रस्त थे। उन्होंने खेती को प्राथमिकता नहीं दी। बड़े उद्योग धंधों को महत्व दिया। अब बताइये भारत एक बड़ा उपमहाद्वीप है। अगर भारत बड़ी चीजों पर आधारित योजनाएं नहीं बनाएगा तो कौन बनाएगा। आप बांध बनायेंगे, फैक्ट्रियां लगायेंगे। किसी देश में गरीबी बिना औद्योगिकीकरण के नहीं मिटी है। उन पर आरोप है कि उन्होंने कृषि पर ध्यान नहीं दिया, छोटे-कुटीर उद्योगों के बारे में नहीं सोचा, विज्ञान और तकनीक के लिए ही योजनाएं तैयार कीं। यह सब गलत है। इन सब चीजों को गांधी जी से बेहतर कौन जान सकता था। फिर भी अगर उन्होंने बनाया, तो उसकी वजह थी। गांधी जी की वैचारिक टकराहट सबसे ज्यादा नेहरू से ही हुई। इस टकराहट से न सिर्फ नेहरू ने सीखा, बल्कि गांधी ने भी सीखा। गांधी जी ने पहले कहा कि नेहरू सोचता है कि टैक्नोलॉजी से इस देश का कल्याण है, लेकिन नहीं। टैक्नोलॉजी से पश्चिम में गरीबी आयी है। पर जब नेहरू जी ने उनसे टैक्नोलॉजी पर बात की कि टैक्नोलॉजी तो कई तरह की होती है। हर देश को अपनी टैक्नोलॉजी बनानी पड़ती है। बीज बोने की मशीन भी टैक्नोलॉजी है। फैक्ट्री भी टैक्नोलॉजी है। तब गांधी जी एकदम पलटे-अगर टैक्नोलॉजी बेरोजगारी नहीं लाएगी, बल्कि आमदनी बढ़ाएगी तो ऐसी टैक्नोलॉजी को मैं पूरा समर्थन दूंगा। उधर नेहरू ने कहा कि गांधी ने हमें सिखाया कि भारत शहरों में नहीं गांवों में बसता है। भारत बड़े आदमियों का भारत नहीं है। भारत उस वर्ग का देश है, जिसमें कुटीर उद्योगों को टैक्नोलॉजी के साथ लेकर चलना होगा। अत: दोनों ने एक-दूसरे से सीखा।

जब गांधी जी ने कहा कि मेरे बाद मेरा उत्तराधिकारी न राजगोपालाचारी होगा, न सरदार पटेल, न कृपलानी बल्कि नेहरू होगा, तो क्यों कहा? यह एक बड़ा प्रश्न है। दरअसल नेहरू और देश को सबसे ज्यादा गांधी ने समझा। वे जानते थे कि वह भारत पर अपनी बात नहीं लादेगा और हर मतवाले लोगों से सलाह लेकर, उन्हें समझ कर चलेगा। उनकी बात से अपने में सुधार लाने की गुंजाइश और प्रवृत्ति नेहरू में ही है।

जिस समय भारत आजाद हुआ, उस समय कम्युनिस्ट विचारधारा के चलते तेलंगाना में किसान क्रांति हुई। तब ज्यादातर लोगों का मत था कि सेना भेज कर इस क्रांति को दबा दिया जाए। लेकिन नेहरू ने कहा कि इस तरह की क्रांति को दबा तो दोगे, लेकिन यह भी तो सोचो कि किसान क्रांति क्यों हुई तेलंगाना में?जब तक यह शोषक भूमि व्यवस्था रहेगी तब तक क्रांति के बीज सारे भारत में रहेंगे। तो क्या आप चाहेंगे कि भारत में कई छोटे-छोटे तेलंगाना बन जाएं?यदि नहीं तो एक नया भूमि सुधार कार्यक्रम ला कर उसका क्रियान्वयन करना होगा। तेलंगाना का यह उत्तर है। इसी तरह खादी ग्रामोद्योग कमीशन किसके वक्त में बना? जाहिर है नेहरू के जमाने में। सामुदायिक विकास योजना किसके जमाने में बनी-नेहरू के जमाने में।

जो लोग सोचते हैं कि पब्लिक सेक्टर को खत्म कर देंगे और निजीकरण लाएंगे वे गलत हैं, व्यावहारिक नहीं हैं। नेहरु ने कहा था कि पब्लिक सेक्टर की खामियों को अलग करो, उसे मिटाओ मत। भारत जैसे देश में इसे मिटाया नहीं जा सकता। उस पर नौकरशाही का कब्जा न होने दें। नेहरू जी ने हमें विचार दिया, कार्यक्रम दिया। दरअसल उतना बड़ा विचारक किसी और विकासशील देश में आजतक पैदा नहीं हुआ है। उनका दर्शन अपने आपमें एकदम मौलिक था। यही वजह है कि जब पश्चिम और पूर्व शीत युद्ध में था, तब भी हमें दोनों तरफ से सहायता मिली। सभी विचारकों ने नेहरू जी की इस सफलता का नेहरूवादी प्रयोग किया।

शिकायत करना ठीक नहीं

नेहरु को टुच्चापन बहुत नापसन्द था। वह लोगों की संकीर्णता से बहुत ही दुखी होते थे। वह यह नहीं चाहते थे कि लोग एक-दूसरे की बुराई करें। एक दिन एक काँग्रसी नेता आनन्द भवन में आये और उन्होंने आधा घण्टा तक एक साहब की बेतहाशा निन्दा की। नेहरु को गुस्सा तो आ ही रहा था, मगर वह सब्र से चुपचाप बैठे रहे और सब बात सुनते रहे। जब उन सज्जन ने बुराई करना बन्द किया तब जवाहरलाल जी ने आहिस्ता से कहा, 'देखिये साहब, जो आप कह रहे हैं वह सौ फीसदी सही हो सकता है लेकिन जो लोग इस तरह से दूसरों की बुराई करते हैं मैं उनके बारे में बहुत अच्छी राय नहीं रख सकता।' वह सज्जन हक्के-बक्के रह गये। उस दिन मैंने नेहरु के कमरे में जिन्दगी का एक बहुत बड़ा सबक सीखा और जब कभी मुझे दूसरे की निन्दा करने की तबियत होती है तो मुझे उनकी वह बात याद आ जाती है।

हर युग में एक देश विश्व में नयी चेतना का केन्द्र रहा है। जैसे पुनर्जागरण के बाद युरोप आधुनिक सभ्यता का केन्द्र बना। फ्रांस की क्रांति समानता की क्रांति लायी और इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति विकास की क्रांति लायी। फिर उनकी कमजोरियां भी सामने आयीं। उनके अपने देश में ही समानता नहीं आ पायी। वे साम्राज्यवादी देश बन गए। इसलिए विश्व को पश्चिम यूरोप से जो आशाएं थीं, वे भंग होने लगीं। पूंजीवादी समाज से लोगों की आस्था टूटने लगी। फिर रूस में क्रांति हुई। सोवियत संघ लेनिन के नेतृत्व में नए समाज की नींव रख रहा था। विश्व की दृष्टि यूरोप से हटकर रूस पर टिक गई। चाहे वे रोमा रोलां हों, आइंस्टीन हों, बनार्ड शॉ हों, सभी बड़ी उत्सुकता से नए सूर्योदय की प्रतीक्षा करने लगे।

जब हमारा चिंतन शुरू हुआ, हमारी आजादी का आंदोलन शुरू हुआ तो उसमें कई विचारक सामने आए-राजा राम

मोहन राय से लेकर दादा भाई नौरोजी तक। आर. सी. दत्त भी आये। आर सी दत्त ने अंग्रेजों द्वारा लागू की गई राजस्व व्यवस्था, भू-व्यवस्था और भारत किस तरह गरीब हुआ, इन सबकी विवेचना की। इसके बाद एम जी रानाडे ने 'इकॉनामिक ड्रेन' के मत से विचार दिए उसके बाद गांधी जी आये। उन्होंने पश्चिमी चिंतन की दिशा देखी। रूस में हुए नए समाजवादी प्रयोग को परखा। उसके बाद ही उन्होंने कहा कि पूंजीवादी व्यवस्था में न्याय नहीं है, राजनीतिक स्वतंत्रताएं नहीं हैं। वे सब हम लाएंगे, हम मिश्रित अर्थव्यवस्था लायेंगे। तब सारे विश्व की आंखें इस नए केन्द्र पर लग गईं। ये नेहरू जी ही थे, जिन्होंने विश्व स्तर पर भारत को एक नए प्रयोग का केन्द्र बना दिया। ये जो छोटे-छोटे कम दृष्टिकोण वाले लोग हैं जो आज नेहरू की आलोचना करते हैं, वे उनका यह महान व्यक्तित्व नहीं देख पाते हैं। नेहरु का सारा विकास युद्ध पर आधारित न होकर, शांति आधारित था, जो अपने आपमें बड़ी बात है ओर इसी कारण नेहरू जी एक भारतीय नेता ही नहीं बल्कि एक विश्व पुरुष बन गए।

क्या वे तानाशाह थे?

पंडित जी में अधीरंता थी, अपनी बात को आगे बढ़ाने की जिद थी। उनमें अहंकार भी था और जनता के बीच गरचे वे बहुत जाते थे, मगर अपने को जनसमूह का सदस्य वे नहीं समझते थे। खैरियत की बात यह थी कि वे आदमी ईमानदार थे और बराबर अपना मनोविश्लेषण आप ही करते रहते थे। 'सत्ता पाकर मैं कहीं तानाशाह न हो उठूं', ऐसे सवाल भी उनके भीतर बराबर उठते रहते थे और सचाई की इसी प्रवृत्ति ने उन्हें तानाशाह बनने से बचा लिया।

सन् 1937 के आसपास 'मॉडर्न रिव्यू' में उन्होंने अपनी आलोचना, चाणक्य के छद्म नाम से, आप ही लिखी थी। उस लेख में उन्होंने जनता को जवाहरलाल से सावधान रहने की चेतावनी दी थी, क्योंकि " जवाहरलाल के सारे ढब-ढांचे तानाशाह के हैं। वह भयानक रूप से लोकप्रिय है, उसका संकल्प कठोर है, उसमें ताकत और गुरूर है, भीड़ का वह प्रेमी और साथियों के प्रति असहनशील है तथा ऐसे आदमियों से वह घृणा करता है, जिनमें किसी भी तरह की कमजोरी हो या जो अपनी जवाबदेही मुस्तैदी से अंजाम नहीं दे सकें। सारी दुनिया जानती है कि वह क्रोधी स्वभाव का है। काम करवाने की उसकी आतुरता इतनी प्रखर है कि थोड़ी सी भी देर उसे गवारा नहीं होती। नये अभियानों के लिए उसके भीतर ऐसी बेचैनी है कि जो भी चीज उसे पसंद नहीं है, वह उसे तोड़ मरोड़ कर फेंक देगा। जवाहरलाल ऐसा आदमी है, जो प्रजातंत्र की प्रक्रिया को ज्यादा दिनों तक बर्दाश्त नहीं कर सकता।''

मगर वह आत्मविश्लेषण ही बतलाता है कि यह आदमी तानाशाह नहीं होगा। जिन्हें तानाशाह बनना होता है, वे ऐसी निश्छलता से नहीं बोलते। प्रधानमंत्री होने पर पंडित जी अपने स्वभाव पर, अपने भीतर के छिपे चोर पर बराबर पहरा देते रहे। खासकर, संसद में वे अत्यंत सावधान रहते थे और जो मत अधिकांश लोगों का होता था, उसे देर सबेर अवश्य मान लेते थे। पंडित जी के जीवन से यह सबक लिया जा सकता है कि तानाशाह हमेशा कुदरती तौर पर बने बनाये ही पैदा नहीं होते, उन्हें आगे पीछे के लोग भी बिगाड़ देते हैं।

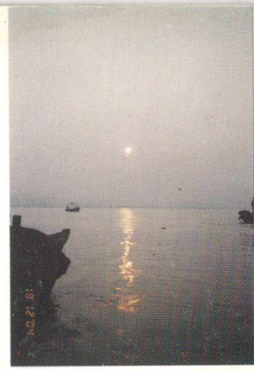
कुछ तो दीवाने में होता है जुनूं का भी असर
और कुछ लोग भी दीवाना बना देते हैं।

● *रामधारी सिंह दिनकर*

**लोकदेव नेहरु" पुस्तक से साभार*

गंगा भारत की प्राचीनता की निशानी

● **जवाहरलाल नेहरु**



(आखिरी वसीयत : नेहरू की राष्ट्र को सौंपी गई आखिरी वसीयत जो उन्होंने 21 जून 1954 को लिखी थी और जिसको उनके निधन के बाद 3 जून 1964 को प्रसारित किया गया)

मुझे, मेरे देश की जनता ने, मेरे हिन्दुस्तानी भाइयों और बहनों ने, इतना प्रेम और इतनी मुहब्बत दी है कि मैं चाहे जितना कुछ करूं, वह उसके छोटे से हिस्से का भी बदला नहीं हो सकता। सच तो यह है कि प्रेम इतनी कीमती चीज होती है कि इसके बदले कुछ भी देना मुमकिन नहीं। इस दुनिया में बहुत से लोग हुए जिनको अच्छा समझकर, बड़ा मानकर, उनका आदर किया गया, पूजा गया, लेकिन भारत के लोगों ने, छोटे और बड़े, अमीर और गरीब, सब तबकों के बहनों और भाइयों ने, मुझे इतना ज्यादा प्यार दिया कि जिसका बयान करना मेरे लिए मुश्किल है और जिससे मैं दब गया हूं। मैं आशा करता हूं कि मैं अपने जीवन के बाकी बरसों में अपने देशवासियों की सेवा करता रहूंगा और उनके प्रेम के योग्य साबित होऊंगा।

बेशुमार दोस्तों और साथियों के मेरे ऊपर और भी ज्यादा एहसान हैं। हम बड़े-बड़े कामों में एक-दूसरे के साथ रहे, शरीक रहे, मिल-जुलकर काम किए। यह तो होता ही है कि जब बड़े काम किए जाते हैं, उनमें कामयाबी भी होती है, नाकामयाबी भी होती है। मगर वह सब शरीक रहे, कामयाबी की खुशी में भी और नाकामयाबी के दुख में भी।

मैं चाहता हूं और सच्चे दिल से चाहता हूं कि मेरे मरने के बाद कोई धार्मिक रस्में अदा न की जाएं। मैं ऐसी बातों को मानता नहीं हूं और सिर्फ रस्म समझकर उसमें बंध जाना, धोखे में पड़ना मानता हूं। मेरी इच्छा है कि जब मैं मर जाऊं तो मेरा दाह संस्कार कर दिया जाए। अगर विदेश में मरूं तो मेरे शरीर को वहीं जला दिया जाए और मेरी अस्थियां इलाहाबाद भेज दी जाएं। उनमें से मुट्ठी भर गंगा में डाल दी जाएं और उनके बड़े हिस्से के साथ क्या किया जाए मैं आगे बता रहा हूं। उनका कुछ भी हिस्सा किसी भी हालत में बचाकर न रखा जाए।

गंगा में अस्थियों का कुछ हिस्सा डलवाने की इच्छा के पीछे, जहां तक मेरा ताल्लुक है, कोई धार्मिक ख्याल नहीं है। इसके बारे में मेरी कोई धार्मिक भावना नहीं है। मुझे बचपन से गंगा और यमुना से लगाव रहा है, और जैसे-जैसे मैं बड़ा हुआ, यह लगाव बढ़ता रहा। मैंने मौसमों के बदलने के साथ-साथ इनमें बदलते हुए रंग और रूप को देखा है और कई बार मुझे याद आयी उस इतिहास की, उन परंपराओं की, पौराणिक गाथाओं की, उन गीतों और कहानियों की, जो कि कई युगों से उनके साथ जुड़ गयी हैं और बहते हुए पानी में घुल-मिल गई हैं।

अशिष्टता से चिढ़

जब लोग नेहरु के पास हुल्लड़ करते थे तो उन्हें नागवार गुजरता था। जब वह भाषण देने जाते थे तब यह चाहते थें कि जनता चुपचाप बैठकर उनकी बातचीत सुने और इधर-उधर लोग न चिल्लायें। प्रबन्धक लोगों की अक्सर यह आदत होती है कि वे खुद जलसों में 'बैठ जाओ, बैठ जाओ, खामोश रहो खामोश रहो' के नारे लगाने लगते हैं। नेहरु चाहते थे कि हर जगह लोग शान और इज्जत से बर्ताव करें। जब प्रबन्धक लोग जनता को खामोश करने में नाकामयाब होते थे तो नेहरु उनसे बैठ जाने को कहते थे और खुद भीड़ पर एकदम काबिज होते थे। लोगों की एक और आदत होती है कि जलसों में मुख्य अतिथि के स्वागत में अक्सर मानपत्र पढ़ते है, तारीफ के पुल बाँधते हैं और उसी मान-पत्र में अपनी माँगें भी पेश करते है। नेहरु इस बात को अशिष्ट और अनुचित समझते थे। कभी-कभी लोगों को ऐसा करने से मना भी करते थे।

गंगा तो विशेष कर भारत की नदी है, जनता की प्रिय है, उसकी आशाएं और उसके भय, उसके विजयगान, उसकी विजय और पराजय, गंगा तो भारत की प्राचीन सभ्यता का प्रतीक रही है, निशानी रही हे, सदा बदलती, सदा बहती, फिर भी वही गंगा की गंगा। वह मुझे याद दिलाती है हिमालय की, बर्फ से ढंकी चोटियों की ओर गहरी घाटियों की, जिनसे मुझे मुहब्बत रही है, उनके नीचे उपजाऊ और दूर-दूर तक फैले मैदानों की, जहां काम करने में मेरी जिंदगी गुजरी है। मैंने सुबह की रोशनी में गंगा को मुस्कराते , उछलते-कूदते देखा है और देखा है शाम के साये में उदास, काली सी चादर ओढे हुए, भेद भरी जाड़ों में सिमटी सी आहिस्ते बहती सुंदर धारा, और बरसात में दौड़ती हुई, समुद्र की तरह चौड़ा सीना लिए, और संसार को बर्बाद करने की शक्ति लिए हुए, यही गंगा मेरे लिए निशानी है भारत की प्राचीनता की, यादगार की, जो बहती आयी है वर्तमान तक और बहती चली जा रही है भविष्य के महासागर की ओर।

भले ही मैंने पुरानी परंपराओं, रीति और रस्मों को छोड़ दिया हो और चाहता भी हूं कि हिन्दुस्तान इन सब जंजीरों को तोड़ दे, जिनमें वह जकड़ा है, जो उसको आगे बढ़ने से रोकती हैं और देश में रहने वालों में फूट डालती हैं, जो बेशुमार लोगों को दबाये रखती हैं और जो शरीर और आत्मा के विकास को रोकती हैं। चाहे यह सब मैं चाहता हूं , फिर भी मैं यह नहीं चाहता कि मैं अपने को पुरानी बातों से बिल्कुल अलग कर लूं। मुझे फख्र है कि इस शानदार उत्तराधिकार का, इस विरासत का, जो हमारी रही है और हमारी है और मुझे यह भी अच्छी तरह से मालूम है कि मैं भी सबों की तरह, इस जंजीर की एक कड़ी हूं, जोकि कभी नहीं और कहीं नही टूटी है और जिसका सिलसिला हिन्दुस्तान के अतीत के इतिहास में प्रारंभ से चला आता है। यह सिलसिला मैं कभी नहीं तोड़ सकता, क्योंकि मैं उसकी बेहद कद्र करता हूं, और इससे मुझे प्रेरणा, हिम्मत और हौसला मिलता है, मेरी इस अकांक्षा की पुष्टि के लिए और भारत की संस्कृति को श्रद्धांजलि भेंट करने के लिए, मैं यह दरख्वास्त करता हूं कि मेरी भस्म की एक मुट्ठी इलाहाबाद के पास गंगा में डाल दी जाए, जिससे कि वह उस महासागर में पहुंचे जो हिन्दुस्तान को घेरे हुए है।

मेरे भस्म के बाकी हिस्से को क्या किया जाए? मैं चाहता हूं कि इसे हवाई जहाज में ऊंचाई पर ले जाया जा कर बिखेर दिया जाए, उन खेतों पर, जहां भारत के किसान मेहनत करते हैं, ताकि वह भारत की मिट्टी में मिल जाये और उसी का अंग बन जाए।

हमने संविधान में भारत को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया है। इसका अर्थ धर्म का अभाव नहीं। इसका अर्थ है सभी धर्मों के प्रति बराबर का सम्मान तथा सभी धर्मों को मानने वालों को समान अवसर।

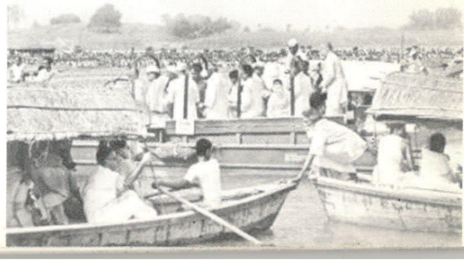
• पं. जवाहरलाल नेहरु

भाषण, नई दिल्ली, 10 जुलाई, 1961

“सह अस्तित्व का एक ही विकल्प है
- एक दूसरे का विनाश”

• पं. जवाहरलाल नेहरु

ऑब्जर्वर, लंदन, १९५४



राष्ट्रपति

‘राष्ट्रपति जवाहरलाल की जय’ प्रतीक्षा करती हुई भीड़ के बीच से तेजी से गुजरते हुए राष्ट्रपति ने सिर उठाकर, देखा, उनके हाथ उठे और नमस्कार की मुद्रा में जुड़ गए और उनका पीला, दृढ़ चेहरा एक मुसकान से प्रदीप्त हो गया, यह मुसकान उनकी भावुकता की परिचायक थी और जिन लोगों ने उसे देखा उनपर इसका तुरंत असर पड़ा, और उन्होंने भी प्रसन्नमुख होकर पुनः जय-ध्वनि शुरू की।

मुसकान आयी और गयी और फिर चेहरा कठोर और उदास हो गया, मानो उस भावना का जिसे उसने उपस्थित जन-समूह में जाग्रत किया था, उस पर प्रभाव ही न हो, प्रायः ऐसा प्रतीत हुआ कि उस मुस्कान और उसके साथ की मुद्रा में विशेष वास्तिवकता नहीं है, यह सब जन समूह से सदिच्छा प्राप्त करने का एक बनावटी ढंग मात्र था, जिसने कि उसे हृदय में बिठा रखा था। क्या यह अनुमान ठीक था?

जवाहरलाल को फिर ध्यान से देखिए एक लंबा जुलूस है और हजारों आदमी उनकी मोटरगाड़ी को घेरकर खड़े जोर-शोर से उनकी जय-जयकार करते हैं, मोटर की गद्दी पर अपने को खूब संभालते हुए तन कर खड़े हो जाते हैं, देखने में वह लंबे लगते हैं और एक देवता की भांति शांत और उस अपार जन-समूह से अविचलित है, अचानक फिर वही मुसकान, या उन्मुक्त हंसी दिखती है, तनाव टूटता है और भीड़ भी उन्हीं के साथ हंस पड़ती है, बिना यह जाने हुए कि वह किस बात पर हंस रही है, वह देवता-स्वरूप नहीं रह जाते, बल्कि इंसान बन जाते हैं और जिन हजारों व्यक्तियों के बीच वह घिरे हुए हैं, उनसे एक अपनापा और संगी का रिश्ता कायम करते हैं और जनसमूह गद्गद हो जाता है और मैत्री भाव से उन्हें अपने हृदय में स्थान देता है, लेकिन मुसकान लुप्त हो गयी है और फिर वही पीला और दृढ़ चेहरा दिखायी पड़ रहा है।

क्या यह सब कुछ स्वाभाविक है, या एक सार्वजनिक नेता का स्वांग मात्र है?शायद दोनों ही बातें हैं और लंबे अभ्यास ने स्वाभाव का रूप ग्रहण कर लिया है, सबसे प्रभावशाली मुद्रा वह है, जिसमें मुद्रा का आभास न मिले, और जवाहर लाल ने बिना रंग और बुकनी लगाए हुए अभिनय करने की कला खूब सीख ली है, लापरवाही और बेलौसी दिखाने के साथ वह सार्वजनिक नाट्य मंच पर बड़ा कुशल और कलापूर्ण अभिनय करते हैं, यह सब उन्हें और उनके देश को कहां ले जाएगा? इस अन्यमनस्कता के दिखावे की तह में आखिर उद्देश्य क्या है? इस छद्म मुद्रा के पीछे उनकी क्या इच्छाएं, कैसी शक्ति लालसा और क्या अतृप्त आकांक्षाएं हैं?

हर हालत में यह प्रश्न मनोरंजक है, क्योंकि जवाहरलाल का व्यक्तित्व ऐसा है कि वह बरबस अपनी ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है, लेकिन हमारे लिए इन प्रश्नों का गहरा महत्व भी है, क्योंकि जवाहरलाल का वर्तमान

दिल्ली दिमागों को कुन्द कर देती है

जवाहरलाल को अपने शहर इलाहाबाद से बहुत प्रेम था। वह दिल्ली को नापसन्द करते थे। उन्होंने एक बार कहा था-

‘मुझे पता नहीं कि एक अरसे तक दिल्ली में रहने से हम लोगों के उपर क्या असर पड़ेगा क्योंकि यह मेरा तजुर्बा है कि लोगों के दिलों और दिमागों को दिल्ली कुन्द कर देती है और उनकी बौद्धिक शक्ति को कमजोर कर देती है और शारीरिक शक्ति तो अवश्य ही कमजोर हो जाती है। हो सकता है कि हम लोगों पर ऐसा असर पड़े, मगर मुझे ऐसी उम्मीद नहीं है। नई दिल्ली इतनी दूर जिस प्रकार बसायी गयी है, हिन्दुस्तान के लिए अनोखी है- वह हिन्दुस्तान से एक बिल्कुल अलग सी चीज है। हालाँकि यहाँ पर हिन्दुस्तान के बहुत से मशहूर लोग रहते हैं फिर भी यह भारत की नुमाइन्दगी नहीं करती है। दिल्ली के इस वातावरण को बदलना किस कदर मुमकिन है और इसको हिन्दुस्तान से असली हालात के नजदीक लाना और उसका प्रतीक बनाना कितना सम्भव है, मैं नहीं जानता हूँ। हममें से सबका यह फर्ज है कि इसकी कोशिश करें।’

हिन्दुस्तान और संभवत: आने वाले हिन्दुस्तान से एक अटूट नाता है और उनमें यह शक्ति है कि वह हिन्दुस्तान का बहुत भला भी कर सकते हैं और उतना बुरा भी, इसलिए इन प्रश्नों के उत्तर हमें ढूंढने हैं...

करीब दो साल से वह कांग्रेस सभापति हैं और कुछ लोगों का ख्याल है कि वह कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति के पिछलगुए मात्र और दूसरों के रोक दबाव में चलने वाले हैं फिर भी वह अपनी व्यक्तित्व प्रतिष्ठा और जनता के सभी तरह के लोगों पर अपना प्रभाव बराबर दृढ़तापूर्वक बढ़ाते ही जा रहे हैं, वह किसान और कामगार, व्यापारी और फेरीवाले, ब्राह्मण और अछूत, मुसलिम, सिख, ईसाई, यहूदी इन सब तक पहुंचते हैं, जो कि भारतीय जीवन की विविधता के अंग हैं, जिस भाषा में वह इन सबसे बोलते हैं, वह औरों की भाषा से कुछ अलग है। और वह सदा इन सबको अपने पक्ष में लाने के प्रयत्न में लगे रहते है. इस अवस्था में भी वह बड़ी स्फूर्ति के साथ हिन्दुस्तान जैसे विशाल देश में सर्वत्र पहुंचते हैं और सभी जगह अद्भुत लोकप्रियता से उनका स्वागत हुआ है, उत्तर से ले कर कन्या कुमारी तक एक विजयी सीजर की भांति उन्होंने यात्रा की है, और जहां-जहां वह गए है, उन्होंने अपने यश की कथाएं छोड़ी हैं। क्या यह सब उनका शौक और दिल बहलाव है या इसमें कोई गहरी चाल है या वह केवल किसी ऐसी शक्ति का खेल है, जिसे वह आप नहीं समझ पाते? अथवा क्या यह उनकी शक्ति लालसा है, जिसका वर्णन उन्होंने अपनी 'मेरी कहानी' में किया है और जो उन्हें एक जनसमूह से दूसरे जनसमूह की ओर प्रेरित करती है और उनसे अपने आप चुपके से कहलाती है 'मैंने इन जनधाराओं को अपने हाथों में समेट कर अपनी इच्छा-शक्ति को नक्षत्रों द्वारा आकाश के आर-पार अंकित कर लिया है।

अगर उनकी धुन बदल जाये तो क्या हो? जवाहरलाल जैसे लोगों पर, उनमें बड़े और अच्छे कामों को करने की चाहे जैसी शक्ति हो, जन सत्तात्मक व्यवस्था में भरोसा नहीं किया जा सकता। वह अपने आपको जनतावादी और समाजवादी कहते हैं, और इसमें संदेह नहीं कि सच्चे उत्साह से वह ऐसा कहते है, फिर भी हर एक मनोवैज्ञानिक जानता है कि मस्तिष्क अंत में हृदय का गुलाम होता है और तर्क को तो सदा घुमाकर मनुष्य की अदम्य प्रेरणाओं और इच्छाओं के अनुकूल बनाया जा सकता है। तनिक सी उमेठ काफी है और जवाहर लाल एक तानाशाह बन सकते हैं और धीमी गति से चलने वाली जनसत्ता के आडंबरों को ठुकरा सकते हैं। जनतावाद और समाजवाद की भाषा और नारों को वह भले ही अपनाये रहें, लेकिन हम सभी जानते है कि इसी तरह की भाषा पर फासिस्टवाद भी पला और पुष्ट हुआ है, और बाद में उसने इसे व्यर्थ के कचरे की भांति अलग फेंक दिया है।

विश्वास और स्वाभाव जवाहरलाल निश्चय ही फासिस्ट नहीं है, उनमें ऊंचे घराने वालों की सहज-बुद्धि इतनी पर्याप्त है कि फासिस्टवाद के भोंडेपन और गंवारूपन को वह सहन करेंगे उनकी मुखाकृति और स्वर बताते हैं कि सार्वजनिक स्थानों में घरेलू मुखाकृतियां जितनी आकर्षक और सुंदर दीखती हैं, सार्वजनिक मुखाकृतियां घरों के भीतर उतनी सुंदर और अच्छी नहीं लगतीं।

चूड़ीदार पायजामा

प्रेसीडेन्ट रुजवेल्ट के प्रतिनिधि कर्नल लुई जान्सन भारत में आये थे। वह नेहरु से बहुत ही प्रभावित हुए और उनसे अक्सर मिलना चाहते थे। जब काँग्रेस दिल्ली में क्रिप्स समझौते में भाग ले रही थी तब कर्नल जान्सन वहाँ थे और नेहरु से मिलते थे। एक दिन नेहरु को चूड़ीदार पायजामा पहने देखकर वह बहुत चकराये और सोचने लगे कि इसके अन्दर नेहरु के पैर कैसे घुसते होंगे। उन्होंने बड़े संकोच के साथ माफी माँगते हुए जवाहरलाल से पूछा, 'मिस्टर नेहरु, मुझे क्षमा कीजिए, पर मैं यह जानना चाहता हूँ कि आप इस पायजामें में अपने पैर कैसे डाल पाते हैं? नेहरु ने उत्तर दिया, 'वह मेरे पैरों पर बड़ी आसानी से चढ़ जाते हैं', और फिर उन्होंने जान्सन को बताया कि चूड़ीदार पायजामा कैसे पहना जाता है।

सुनिए अब पायजामे की एक और कहानी। यह कहा जाता है कि एक बार लन्दन में नेहरु एक जलसे में चूड़ीदार पायजामा और शेरवानी पहन कर गये और जैसे ही वह बोलने के लिए खड़े हुए वैसे ही कुछ लोग हाल में एक दूसरे से फुसफुस करने लगे। उन्होंने सोचा कि जल्दी में नेहरु पतलून पहनना भूल गये हैं और सिर्फ पतलून के नीचे पहनने वाला अंडरपैंट पहन कर चलें आये हैं।

फासिस्ट मुखाकृति एक बनावटी मुखाकृति है और वह घर-बाहर कहीं भी अच्छी नहीं लगती। जवाहर लाल के चेहरे और स्वर में निश्चय ही घरेलूपन है। इस बात में कोई धोखा नहीं हो सकता है कि जन समूह में और सार्वजनिक सभाओं में भी उनके बोलने का ढंग एक आत्मीयता लिए हुए होता है। ऐसा जान पड़ता है कि वह अलग-अलग व्यक्तियों से निजी और घरेलू ढंग से बातें कर रहे हों, उनकी बातो को सुनकर और उनके संवेदनशील चेहरे को देखकर मन में कौतूहल होता है और यह जानने का कि इस सबके पीछे कौन से विचार और इच्छाएं हैं जो काम कर रही हैं, कैसी जटिल और दबी हुई मनोवृत्तियां कैसे संयत किए हुए और शक्ति में परिवर्तित आवेग, क्या आकांक्षाएं हैं, जिन्हें कि वह अपने से भी स्वीकार करने का साहस नहीं कर सकते हैं।

सार्वजनिक भाषण देते हुए विचारों का क्रम उन्हें बांधे हुए रहता है लेकिन दूसरे अवसरों पर उनकी आकृति उनका भेद खोल देती है, क्योंकि उनका मन भटक कर नए क्षेत्रों, नयी कल्पनाओं में पहुंच जाता है और एक क्षण के लिए अपने साथ के व्यक्ति को भूलकर अपने मस्तिष्क द्वारा कल्पित पात्रों से मानो चुपके-चुपके बातें करने लगते हैं। क्या वह उन मानवीय संपर्कों के बारे में सोचते हैं, जिन्हें अपनी जीवन यात्रा में -जो कि कठिन और तूफानी रही है-उन्होंने खो दिया है, लेकिन जिनकी वह कामना करते हैं?या वह एक स्वनिर्मित भविष्य और उसके संघर्ष तथा उसमें प्राप्त विजय का स्वप्न देखते हैं? इतना तो उन्हें जानना ही चाहिए कि जो रास्ता उन्होंने चुना है, उसमें विश्राम नहीं है, किनारे बैठकर दम लेने का अवसर नहीं है और विजय प्राप्ति भी और अधिक भार डाल देती है, जैसा कि लारेंस ने अरब वालों से कहा था -अर्थात जीवन के उद्देश्य की सिद्धि।

जवाहर लाल फासिस्ट नहीं बन सकते। फिर भी वे सभी संयोग उपस्थित हैं, जिनसे लोग तानाशाह बना करते हैं-महान लोकप्रियता, एक सुनिश्चित उद्देश्य के लिए दृढ़ इच्छाशक्ति, स्फूर्ति, गर्व, संगठन शक्ति, योग्यता, कड़ाई और जनता के प्रति उनका चाहे जितना प्रेम हो, उनमें दूसरों के प्रति एक असहिष्णुता और कमजोरों और अयोग्यों के प्रति एक घृणा का भाव। उनके क्रोध के आवेगों से लोग भलीभांति परिचित हैं, वह उस पर काबू भले ही पा लें, उनके होठों की फड़क उनका भेद खोल देती है। काम को पूरा कराने की, जो कुछ नापसंद हो उसे मिटाकर नया निर्माण करने की अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति से दूसरे को झुकाना चाहेंगे। वह अधिक समय तक लोकतंत्र की प्रक्रिया को मंद होते हुए नहीं देख सकते हैं। साधारण वातावरण में वह एक सुयोग्य और सफल कार्य-संचालक होने की क्षमता रखते हैं, लेकिन इस क्रांति के युग में तानाशाही आगे खड़ी रहती है और क्या यह संभव नहीं है कि जवाहरलाल अपने को एक तानाशाह समझने लगें।

यह बात जवाहर लाल के लिए और हिन्दुस्तान के लिए भयावह होगी, क्योंकि तानाशाही के जरिए हिन्दुस्तान स्वतंत्रता नहीं प्राप्त कर सकता है। एक सुयोग्य और उदार तानाशाही अधीन वह चाहे थोड़ा बहुत पनप ले, लेकिन वास्तव में वह दबा रहेगा और उसके निवासियों को गुलामी से उद्धार पाने में विलंब हो जाएगा।

धर्म, जाति, रंग, पार्टी, देश, प्रांत, रीति-रिवाज और अमीर गरीब का फर्क दीवारें खड़ी करता है। सौभाग्यवश हमें बांटने वाली इन चीजों के बारे में हमारे बच्चे ज्यादा नहीं जानते। वे एक दूसरे के साथ खेलते-कूदते हैं, काम करते हैं। जब वे बड़े होते हैं तभी वे अपने बड़ों से इन दीवारों के बारे में जानना शुरू करते हैं।

• पं. जवाहरलाल नेहरु
शंकर्स वीकली, बाल विशेषांक, दिसम्बर 1949

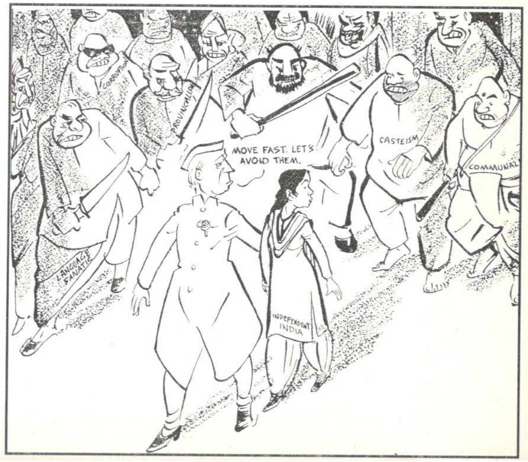
एक साथ दो वर्ष तक जवाहर लाल कांग्रेस के राष्ट्रपति रहे हैं और कई प्रकार से उन्होंने अपने को कांग्रेस के लिए इतना जरूरी बना लिया है कि बहुत से लोगों का झुकाव है कि वह तीसरी बार फिर से राष्ट्रपति चुने जाएं। लेकिन हिन्दुस्तान और जवाहरलाल के हक में इससे बड़ी कुसेवा नहीं होगी। उन्हें तीसरी बार चुनकर हम यह दिखाएंगे कि व्यक्ति विशेष को हम कांग्रेस से बड़ा मानते हैं और इस तरह हम जनता के विचारों को सीजरशाही के पक्ष में प्रवृत्त करेंगे। स्वयं जवाहरलाल में हम गलत प्रवृत्तियों को उभारेंगे और उनकी अहमन्यता और गर्व को बढ़ाएंगे। उन्हें विश्वास हो जाएगा कि एकमात्र वही इस भार को संभाल सकते हैं। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि पदों के प्रति जाहिर में अपनी बेरुखी दिखाने के बावजूद पिछले सत्रह वर्षों से वह कांग्रेस में एक-न-एक महत्वपूर्ण पद थामे रहे हैं। वह सोचने लगेंगे कि कि उनके बिना लोगों का काम नहीं चलेगा और किसी को भी यह सोचने देना, चाहे वह कितना भी बड़ा व्यक्ति क्यों न हो, ठीक नहीं। उनके लगातार तीसरी बार कांग्रेस का राष्ट्रपति बनने में हिन्दुस्तान का हित नहीं।

इस तरह के विचार के लिए एक व्यक्तिगत कारण भी हो सकता है। यद्यपि वह बहादुरी से काम में लगे हैं, फिर भी यह स्पष्ट है कि जवाहरलाल थक गए हैं और बासी पड़ गए हैं। और अगर वह राष्ट्रपति बने रहे तो और भी ढल जाएंगे। उन्हें दम मारने का अवसर यों भी नहीं मिल सकता, क्योंकि शेर की सवारी करने वाले को काठी छोड़ने का मौका कहां मिलता है?फिर भी हम उन्हें गर्व से, बहकने से, और बहुत अधिक भार तथा जिम्मेवारी में पड़कर मानसिक शक्ति-क्षय से रोक सकते हैं। भविष्य में उनसे अच्छे कामों की आशा रखने का हमें हक है। हमें कोई काम ऐसा नहीं करना चाहिए जिससे इस आशा पर संकट आए, न हमें उनको ही अति प्रशंसा द्वारा बिगाड़ना चाहिए। उनमें जो भी अहंमन्यता है, बहुत है, उसे रोकना चाहिए, हमें सीजरों की आवश्यकता नहीं है।

(कांग्रेस अध्यक्ष पद के लिए तीसरी बार अपना नाम प्रस्तावित किए जाने पर जवाहरलाल नेहरू ने 'चाणक्य' छद्म नाम से 1937 में 'मार्डन रिव्यू' में यह लेख लिखा था)

सादा खाना पसन्द था

जवाहरलाल नेहरु खाने-पीने के बारे में ज्यादा झंझट पसन्द नहीं करते थे। 18 जून 1956 को सरकार ने एक अध्यादेश जारी किया था जिसमें लिखा था कि प्रधान मंत्री जी यह चाहते है कि उनके खाने के लिए कहीं भी कोई खास इन्तजाम न किया जाय। वह जहाँ जायेंगे वहीं को रोजमर्रा का खाना खायेंगे। लोगों को बस एक बात का ख्याल रखना चाहिए कि वह सादा खाना पसन्द करते हैं, चाहे वह अंग्रजी खाना हो, चाहे हिन्दुस्तानी। वह मिर्च-मसाला बिल्कुल नहीं खाते हैं, लेकिन कभी-कभी उन्हें तरकारिया ज्यादा पसन्द है। उन्हें शाकाहारी भोजन अधिक रोचक है। आमतौर से वह सुबह दूध के साथ काफी लेते है और शाम को एक प्याला हल्की चाय पीते है।



क्या आप जवाहरलाल को जानते हैं

बहुत दिन हुए मैंने इलाहाबाद के ईविंग क्रिश्चिन कालेज में जवाहरलाल के उपर एक भाषण दिया था। मेरे भाषण का विषय था, 'क्या आप जवाहरलाल को जानते हैं?' इस मीटिंग की अध्यक्षता लालबहादुर शास्त्री ने की थी। मैंने उस मीटिंग में जवाहरलाल की मानवता और शराफत के कई किस्से सुनाये थे। मेरी तकरीर के बाद शास्त्रीजी 'मुड़' में आ गये और उन्होंने अपने भाषण में कई दिलचस्प घटनाओं की चर्चा की। उन्होने बताया कि १९३७ के आम चुनाव के एक दिन पहले नेहरु मिर्जापुर में एक बड़ी सभा में भाषण करने गये। जब उन्हें पता लगा कि 'लाउडस्पीकर' लगाया ही नहीं गया और लोग पंडाल की तरफ बढ़ते ही जा रहे हैं तो उन्हें बडी हैरत हुई। उन्होंने सभा के व्यवस्थापकों से जोर से पूछा, 'क्या आपको मालूम है कि इस दुनिया में एक चीज है जिसे लाउडस्पीकर कहते हैं?'

इन्तजामकारों की हक्की-बक्की बँध गयी लेकिन इससे कोई फायदा तो हुआ नहीं और जलसे में गड़बड़ी चलती रही। वह जलसा इन्सान के सिरों का एक समुद्र-सा हो गया। चारों ओर सिर ही सिर दिखायी पड़ते थे। जनता के बेतहाशा मंच की तरफ बढ़ने और शोरगुल करने से नेहरु को बेहद गुस्सा आया। वह मंच से उनके सिरों पर कूद पड़े और तब जनता को पता चला कि पंडित जी बहुत नाराज हैं। उन्हें यह ख्यांल आया कि वह इस गुस्से में बिना भाषण दिये ही कहीं वापस न चलें जायें। जनता फौरन खामोशी से बैठ गयी और मीटिंग की कार्यवाही कायदे से हुई।

जब नेहरु शास्त्री जी के साथ घर लौट रहे थे तो उन्होंने उनसे रास्ते में कहा, 'कहिए शास्त्रीजी, आज आपने हमारा हुनर देखा, मैंने कैसे जनता को काबू में किया।' शास्त्रीजी ने कहा, 'हम प्रभावित तो हुए परन्तु हमें इस बात से कष्ट था कि आप चप्पल पहने हुए लोगों के सिरों पर चलते गयें।' परन्तु वह गुस्से और ताव में कूद ही गये और उन्हें ख्याल न रहा कि वह चप्पलें पहने थे।

***

गाय की सींग

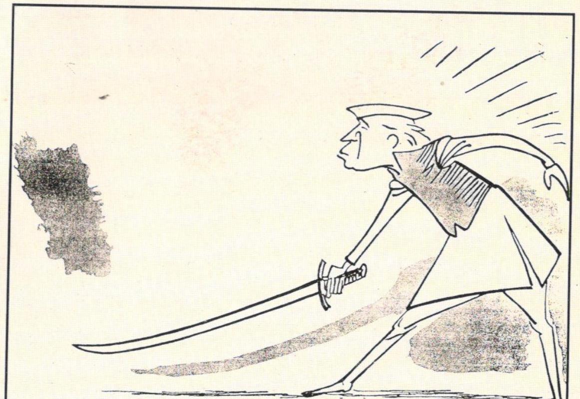
शास्त्रीजी ने एक दूसरा किस्सा सुनाया। सन् 1937 में एक चुनाव सभा से जब जवाहरलाल जी लौट रहे थे तो वह खुद ही मोटर चला रहे थे। मोटर में उनके साथी बैठे थे। जाड़ा बेहद पड़ रहा था लेकिन नेहरु अपने हर एक साथी को मोटर से घर पहुँचाना चाहते थे। अचानक एक दुर्घटना हो गयी। एक गाय सामने आ गयी और उसका सींग टूट गया। रात अँधेरी थी और शायद ही किसी ने इस बात को देखा हो। जवाहरलाल अगर मोटर से अपने घर चले जाते तो किसी को पता भी नहीं चलता कि किसकी मोटर से गाय को चोट लगी। परन्तु नेहरु ने मोटर एकदम रोक दी और गाय के मालिक की खोज करने लगे। कुछ समय के बाद कुछ लोग आये और उन्होंने कहा, 'पण्डित जी आप क्यों परेशान होते है। आप अपने घर जाइए और चिन्ता न कीजिए।' नेहरु ऐसा कभी न कर सकते थे। उन्होंने उन लोगों से कहा कि वह जा सकते हैं यदि वह सब इस बात का वादा करें कि कल सवेरे गाय के मालिक को आनन्द भवन भेज देंगे। उन लोगों ने इस बात की जिम्मेदारी ली और दूसरे दिन गाय का मालिक आनन्द भवन गया और नेहरु ने उसे एक अच्छी खासी रकम उसकी गाय के इलाज के लिए दी।

**पंडित जवाहरलाल नेहरु के जीवन की झलकियां पुरुषोत्तम दास टंडन की किताब 'नेहरु: निराली बातें' से साभार*

लाठी चलाने की हिम्मत

जवाहरलाल बेइंसाफी के खिलाफ हमेशा अपनी आवाज उठाते थे और वह किसी के जुल्म को बर्दाश्त नहीं करते थे। 9 अगस्त 1942 को दूसरे साथियों के साथ बम्बई में उनकी गिरफ्तारी पर सारे देश को बड़ा गुस्सा आया। जब गाड़ी पूना पहुँची तो कुछ बच्चों ने गाँधी जी की जय, जवाहरलाल नेहरु की जय के नारे लगाये। पुलिस उनके उपर डंडा चलाने के लिए बढ़ी। जब नेहरु ने यह देखा तब वह गुस्से में चिल्लाते हुए रेलगाड़ी के दरवाजे के पास पहुँचे और बाहर जाना चाहा। उन्होंने कहा,'बच्चों पर लाठी चलाने की तुम्हारी हिम्मत।'

लेकिन वह गाड़ी से बाहर नहीं जा सके क्योंकि एक हृष्ट-पुष्ट अफ़सर ने उनका रास्ता रोक लिया और उसे वह अपनी जगह से न हटा सके। इससे उन्हें और भी गुस्सा आया और वह एक खिड़की से कूद कर बाहर पहुँच गये। इसका क्या नतीजा होगा इसकी जरा भी परवाह न की। उन्होंने उस पुलिस सार्जेण्ट की, जो लाठी चलाना चाहता था, बड़ी लानत-मलामत की और शायद उसकी थोड़ी बहुत मरम्मत भी कर दी। फौरन ही एक अंग्रेज पुलिस अफसर मि शार्पर आ पहुँचे, उन्होंने सार्जेण्ट को छुड़ाया और नेहरु को कस कर पकड़ लिया। इस घटना की चर्चा करते हुए डॉ पटट्‌भि सीतारामैया ने लिखा है- 'जवाहर ने शार्पर की लौह जकड़ से छूटने के लिए कठिन प्रयत्न किया और इस हालत में भी उन्होंने घूसों से एक मूर्ख हिन्दुस्तानी सिपाही की काफी मरम्मत की जो उनके सामने आ टपका था। मामले को बढ़ता देख कर शंकरराव देव खिड़की से जवाहरलाल को छुड़ाने के लिए बड़बड़ाते हुए कूद पड़े, किन्तु उन्हें कुछ पुलिस वालों ने बीच में ही रोक लिया और उन्हें फिर से गाड़ी के अन्दर बिठा दिया। किसी प्रकार जवाहरलाल को भी गाड़ी के अन्दर पहुँचाया गया और ट्रेन पूना से चल पड़ी।'



एक व्यक्ति ने नेहरु जी को तलवार युद्ध की चुनौती देते हुए कोर्ट में याचिका दायर की जिसे बम्बई कोर्ट ने खारिज कर दिया। लेकिन नेहरु इसके लिए तैयार थे।

कार्टूनिस्ट शंकर की नजर में यह घटना

"अगर धर्म के नाम पर एक व्यक्ति दूसरे को मारने के लिए हाथ उठाता है तो मैं अपनी आखिरी सांस तक उसका मुकाबला करूंगा।"

• पं. जवाहरलाल नेहरु

भाषण, नई दिल्ली, 2 अक्टूबर, 1951

नेहरू जी की जीवन यात्रा के कुछ उल्लेखनीय अवसर

1889.	14 नवम्बर को इलाहाबाद के एक कश्मीरी ब्राह्मण परिवार में जन्म पिता मोतीलाल नेहरू और स्वरूपरानी नेहरू के पहले पुत्र
1912.	बैरिस्टर बन सात साल बाद इंग्लैंड से भारत वापसी। इलाहाबाद हाईकोर्ट बार के सदस्य बने। बांकीपुर कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेकर अपने राजनैतिक जीवन की शुरूआत की। दिसम्बर के अंतिम सप्ताह में लखनऊ कांग्रेस में गांधी जी से पहली बार मुलाकात।
1916-17	फरवरी'16 में दिल्ली में कमला कौल से विवाह और 19 नवम्बर 1917 को इलाहाबाद में इंदिरा जी का जन्म।
1920-21	उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जिले में किसान मार्च का आयोजन करने से अंग्रेजों की नजर में आ गए। 1921 में प्रिंस आफ वेल्स की भारत यात्रा के दौरान अपने पिता व कांग्रेस कार्य समिति के अन्य सदस्यों के साथ पहली बार गिरफ्तार हुए।
1923.	इलाहाबाद म्यूनिसिपल्टी में कांग्रेस के नेता के साथ-साथ उसके चेयरमैन बनाए गए, बाद में उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमिटी के सचिव भी। सितम्बर में दिल्ली अधिवेशन में अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के महासचिव चुने गए।
1928.	युवा आंदोलन में भागीदारी। हिन्दुस्तान सेवा दल के गठन में प्रमुख भूमिका। साइमन कमीशन के खिलाफ देशव्यापी विरोध के दौरान लखनऊ में पुलिस की लाठियां खाईं।
1930.	असहयोग आंदोलन के तहत नमक कानून तोड़ा और जेल गए। कुछ दिन बाद उनकी पत्नी, जो अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की सदस्य थीं को भी जेल हुई।
1931.	पिता मोतीलाल की मृत्यु। गांधी-इरविन समझौते के आरंभिक विरोध के बाद गांधी जी को पूरा समर्थन।
1934-35	सरकार विरोधी भाषण देने के जुर्म में चार वर्ष की सजा। कलकत्ता, देहरादून व नैनी जेल में रखने के बाद उन्हें अल्मोड़ा जेल भेजा गया। देहरादून जेल में उन्होंने अपनी बहुचर्चित आत्मकथा लिखना शुरू किया जिसे 5 महीने बाद अल्मोड़ा जेल में पूरा किया।
1936.	कमला नेहरू की स्विजरलैंड में मृत्यु। दिसम्बर में कांग्रेस के फिरोजपुर अधिवेशन में अपने अध्यक्षयीय भाषण में आजाद भारत के संविधान के लिए संविधान सभा की जरूरत पर बल दिया।
1939-40	महात्मा गांधी और नेताजी को साथ लाने का विफल प्रयास। गांधी जी के सत्याग्रह आंदोलन में पुन: गिरफ्तार आठवीं बार जेल हुई।
1942.	बंबई अधिवेशन में 7 अगस्त को 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित करवाया, जिसके अगले दिन ही गांधी जी कांग्रेस कार्यसमिति के अन्य सदस्यों के साथ गिरफ्तार कर लिए गए। वे गिरफ्तारियां ही भारत छोड़ों आंदोलन की नींव बनीं।

1945-46 मुस्लिम लीग के भारत विभाजन प्रस्ताव का विरोध। आजाद हिंद फौज के तीन अफसरों पर लाल किले में चले प्रसिद्ध मुकदमें में पैरवी। 'डिस्कवरी आफ इंडिया' का प्रकाशन। अगस्त 1946 में अंतरिम सरकार गठित की। उसके उपाध्यक्ष बने ओर उसके एक सदस्य की हैसियत से विदेशी मामलों का कार्यभार संभाला।

1947. 14 अगस्त की रात को आजाद भारत के पहले प्रधानमंत्री बने।

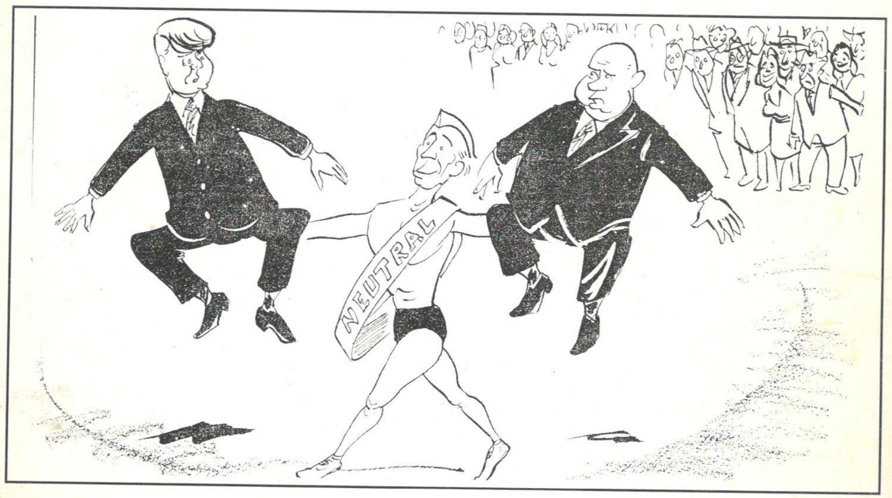
1948-49 संविधान सभा के सम्मुख आजाद भारत की विदेश नीति की रूपरेखा रखी जो गुटनिरपेक्षता पर आधारित थी। नवगठित परमाणु ऊर्जा आयोग का कार्यभार संभाला। लंदन में प्रधानमंत्रियों की कांफ्रेंस में भारत के गणराज्य बनने के बाद भी राष्ट्रमंडल में रहने का फैसला किया।

1954. चीनी नेता चाऊ-इन-लाइ की भारत यात्रा के बाद 'पंचशील' के पांच सिद्धांत प्रतिपादित किए जो हमारी मौजूदा विदेश नीति की बुनियाद हैं।'मिश्रित अर्थव्यवस्था' के अपने सिद्धांत पर चर्चा उठायी और उसे पंच वर्षीय योजनाओं का आधार बनाया।

1960-62 अक्टूबर में संयुक्त राष्ट्र महासभा के अधिवेशन में दिए गए ऐतिहासिक भाषण में विश्वशांति की पुरजोर अपील की।

1963. अखिल भारतीय कांग्रेस के नयी दिल्ली अधिवेशन में कामराज योजना पारित। नेहरू मंत्रिमंडल के अनेक मंत्रियों के इस्तीफे। नेहरू द्वारा पद छोड़ने की पेशकश, परन्तु कांग्रेस कार्य समिति के दबाव में प्रधानमंत्री बने रहने को राजी। भारत का एक 'आधुनिक मंदिर' 740 फुट ऊंचा भाखड़ा बांध राष्ट्र को समर्पित।

1964. 26 मई को देहरादून में तीन दिन की छुट्टियां बिताने के बाद नयी दिल्ली वापसी। 27 मई को दिल का दौरा पड़ने से निधन।



आओ सूरज का मातम करें

● राही मासूम रजा

आज इस शहर में
रौशनी की गिरह कट गई
दोपहर कितनी तारीक है
सूझता ही नहीं
कौन हमसे बहुत दूर है
कौन नजदीक है
दोपहर कितनी तारीक है
आओ, सूरज का मातम करें



चाँद इक खाली कशकोल है
दूर तक नम सूखे सितारों का इक गोल है
कौन बांटेगा सौगात अब नूर की
आओ, सूरज का मातम करें
आओ पलकों से आंसू की शमयें लिए
उसके दर मर चलें

जिसको आँसू गंवारा न थे
रास्ते आज दरिया बने
सफ-ब-सफ
मौज-दर-मौज रोते हुए
प्यार के उस समुंदर की ज़ानिब चलें
जिसने बरसों हमें
अच्छे ख्वाबों की सौगात दी
आरज़ुओं की बरसात दी
और खुद निशाना-लब उठ गया
आओ, सूरज का मातम करें

उस तबस्सुम की बिजली को हम अब कहां पाएंगे
अपनी महरुमियों की कहानी सुनाने कहां जाएंगे
किससे टकराएंगे-
किसपे अब फूल बरसाएंगे
आज हम लुट गए
दोपहर कितनी तारीक है
सूझता ही नहीं
आज कुछ सूझता ही नहीं
कौन जाने कि ये दोपहर कब तलक खत्म हो
आओ, सूरज का मातम करें
आज इक शहर में रौशनी की गिरह कट गई